International Research Journal of Humanities, Language and Literature
ISSN: (2394-1642)
Impact Factor 5.401 Volume 7, Issue 2, February 2020
Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
Website-www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

रामचरितमानस में विविध पर्यावरण चेतना

[1]Anu sharma, [2]Dr. Mukesh Kumar
1 Research Scholar of OPJS University, Churu, Rajasthan
2Associate Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

प्रस्तावना

पर्यावरण' शब्द का अर्थ होता है– 'हमारे चारों ओर का आवरण।' अतः हमें जो चारों ओर से घेरे हुए है वही पर्यावरण है। हमारे जीवन की प्रत्येक घटना पर्यावरण के अन्दर सम्पादित होती है तथा मानव भी अपनी क्रियाओं द्वावारा पर्यावरण को प्रभावित करता है। अतः 'पर्यावरण' की संकल्पना अत्यन्त व्यापक है।

पर्यावरण के अन्तर्गत प्राकृतिक, भौतिक, जैविक, सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण सम्मिलित हैं। जहाँ तक 'चेतना' का प्रश्न है, 'चेतना' का विकास मानव मस्तिष्क से होता है। चूंकि मानव के विकास में व्यक्ति व परिवार की भूमिका से साथ ही समाज की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, अतः चेतना उसे व्यक्तिगत विषय में तथा सामाजिक वातावरण के विषय में भी ज्ञान कराती है। यही ज्ञान विचारशक्ति अथवा बुद्धि है। बुद्धि तक पहुँचने वाला आवेग–संवेग–चिंतन ही 'चेतना' को जन्म देता है और इस 'चेतना' से उत्पन्न प्रेरणा के कारण ही मनुष्य कोई भी कार्य करता है अथवा कर सकता है। यह चेतना प्रकृति, समाज, संस्कृति, राष्ट्र के साथ जुड़कर हमारे इन सबों के प्रति जागरूकता एवं दायित्वबोध को जाग्रत करती है।

रामचरितमानस में पर्यावरण चेतना को विस्तार पूर्वक दिया गया है क्योंकि तुलसीदास जी ने सामाजिक व्यवस्था व विज्ञान के मध्य समन्व्य व तादात्म्य स्थापित करने का विस्तृत वर्णन किया है जिसका प्रमाण रामचरितमानस के प्रथम अध्याय बालकांड में ही दृष्टिगोचर होता है जिसमें तुलसीदास जी ने शिव पार्वती विवाह के संदर्भ में पर्यावरण चेतना और इसके आवश्यक अवयवों को वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित किया है जैसे कि पार्वती शिव

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

से विवाह ना कर सके इस हेतू उन्हें बताया गया कि महादेव जी ने काम को ही भस्म कर डाला है–

"कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।

अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस।।" [1]

इसके प्रत्युत्तर में पार्वती जी ने मुस्कुराकर कहा–

"हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्या अकाम अभोगी।।

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा। सोइ अति बड़ अविवेकु तुम्हारा।।" [2]

"तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ।।

गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ मेहस की नाई।।"

भगवाल शिव का रूप पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में अत्याधिक महत्त्व रखता है क्योंकि शिव के वेश में प्रकृति के संरक्षण का विज्ञान समाहित है जिसमें भगवान शिव के सिर पर सबसे ऊपर गंगाजी हैं– जो कि चन्द्रमा द्वारा संरक्षित है जिसका अभिप्राय यह है कि जल को उच्चतम या सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई हं जिसे चन्द्रमा बनाए रखता है और चन्द्रमा को नवीकरण एवं पुनस्थापित उर्जा का स्त्रोत माना जाता है। चन्द्रमा सूर्य से उर्जा ग्रहण करता है। इस प्रकार गंगा और चन्द्रमा का भगवान शिव के सिर पर एक साथ होना नवीकरण एवं पुनः स्थापित हरित उर्जा के अविनाशी स्त्रोत की ओर संकेत करता है इसी प्रकार भगवान शिव का नीलकंठ स्पष्ट संदेश देता है कि विषैले रसायन तत्त्व कंठ तक ही सुरक्षित होने चाहिए। औद्योगिक विषैले रासायनिक तत्त्व हमारे भोजन अथवा जल स्त्रोत तक नहीं पहुँचने चाहिए इस प्रकार भगवान शिव का स्वरूप पर्यावरणवादी तथा प्रदूषण विरोधी है–

"सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।।

कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन विभूति पट केहरि छाला।।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।

गरल कंठ उर नर सिर माा। असिब वेष सिवधाम कृपाला।।

कर त्रिसूल उरु डमरु विराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा।।

देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।।" [3]

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

भगवान शिव ने दूल्हे के रूप में जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर सांपों का मोर सजाया, जिसका अर्थ है कि विषैले तत्त्व जल में सम्मिलित होकर जल को प्रदूषित नहीं कर पांएगें।

जैविक विविधता की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि भगवान शिव द्वारा सांपों को गले में हार की तरह और शरीर पर शेर की त्वचा को वस्त्र की तरह धारण करने से संकेत दिया गया है कि यदि प्रकृति के जीवों को सुरक्षित नहीं किया गया तो इससे पर्यावरण का इतना नुकसान होगा कि सम्भव है कि यह सम्पूर्ण जगत समाप्त होकर भस्म में परिवर्तित हो जाएगा।

इसीलिए भगवान शिव ने अपने शरीर को भस्म से सज्जित किया था। साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण की ओर संकेत करते हुए भगवान शिव के हाथ में डमरू दर्शाया गया है। शिव रूप में पर्यावरण का प्रतिनिधित्व करने वाले जल (गंगा) वायु (चन्द्रमा) प्रकाश या उष्मा (सूर्य) तथा भूमि (शेर और सांप) के साथ-साथ नन्दी बैल स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति तथा गाय का संरक्षण सुनिश्चित होना चाहिए।

2. रामचरितमानस में सामाजिक पर्यावरण चेतना

'रामचरितमानस' हिन्दू धर्मग्रन्थों में अति महत्त्वपूर्ण है। यदि इसे हिन्दी भाषा का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्मग्रन्थ कहा जाए तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। यह विचार करने योग्य है कि 'मानस' में ऐसे कौन से तत्त्व हैं जिसके कारण तुलसी के समकालीन समय से वर्तमान समय तक 'मानस' उत्तर भारत के हर घर में मौजूद हैं, केवल उनके मंदिरों, पूजा-स्थानों पर नहीं अपितु उनके दैनंदिन जीवन में, दोहों चौपाईयों और उपमाओं में।

इसका कारण, मात्र धार्मिक और राजनैतिक तो कदापि नहीं है। तुलसी के 'मानस' को जिसने अमरत्व प्रदान किया है वह है तुलसी की 'लोकदृष्टि'। 'लोकमंगल' की कामना ही तुलसी की साहित्य-साधना है। वे शास्त्रमत के साथ लोकमत को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं। वे 'मानस' में स्वयं लिखते हैं कि -

'सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला।।'[4]

अर्थात् इस (कवितारूपिणी नदी) का नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत (शास्त्र) इसके दो सुन्दर किनारे हैं। यही लोक ही 'समाज' है। 'राम'

ईश्वर होने के साथ ही इस समाज का अभिन्न हिस्सा हैं। इसलिए वह समाज द्वारा सर्वमत से स्वीकृत भी हैं।

3. रामचरितमानस में सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना

किसी भी समाज के निर्माण में 'संस्कृति' की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, जो उसके भिन्न आस्तित्व को दर्शाती है। संस्कृति हमारे भूत, वर्तमान व भविष्य का सर्वांगीण प्रकार है। संस्कृति हमारे सामाजिक संस्कारों के ही परिणामस्वरूप बनती है और हमारे जीवन से मृत्यु तक किए जाने वाले कार्यों में लक्षित होती है और फिर मृत्योपरांत हमारी संतानों को रक्तः प्राप्त हो जाती है। अतः 'संस्कृति' वह गुण है जो हममें पीढ़ियों से संगृहित होता चला आ रहा है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे व्याख्यायित करते हुए कहा है कि **"जितना भी जीवन का ठाठ है उसकी सृष्टि मनुष्य के मन, प्राण और शरीर के दीर्घकालीन प्रयत्नों के फलस्वरूप हुई है। मनुष्य जीवन रूकता नहीं, पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ता है। 'संस्कृति' के रूपों का उत्तराधिकार भी हमारे साथ चलता है। धर्म, दर्शन, साहित्य, कला उसी के अंग है।"**[5]

'संस्कृति' को परिभाषित करते हुए' भी बदरी नारायण श्रीवास्तव लिखते हैं कि– 'संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है। 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग लगाने से 'संस्कृति' शब्द बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है कोई 'अच्छी बनी हुई वस्तु'। वस्तुतः संस्कृति के मूल में उन्नति की भावना विशेष है।..... 'संस्कृति' इसके ठीक विपरीत व्यक्ति के अंतरंग से विशेष सम्बद्ध है। उसके पीछे गहराई है। किसी देश की संस्कृति से हमारा तात्पर्य वहाँ के रहने वालों के उन विचारों एवं प्रयत्नों से होता है, जो उन्हें समुन्नत करने के लिए उस देश में चल पड़े थे।"[6]

इस प्रकार 'संस्कृति' मानव जाति या समाज को सुदृढ़ता एवं संतुलन प्रदान करती है। वह हममें, हमारे देश व समाज के प्रति मूल्यों आदर्शों व विश्वास का सृजन करती है। श्रीकृष्ण ओझा 'संस्कृति' की विवेचना करते हुए लिखते हैं कि– "संस्कृति' शब्द परिष्कृत या परिमार्जित करने के भाव का भी सूचक है। जिसमें शिष्टता और सौजन्य के भावों का अन्तर्भाव होता है। अतः संस्कृति मानव की सहज प्रवृत्तियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है। जीवन का चरमोत्कर्ष प्राप्त करना इसके विकास का परिणाम है। व्यक्ति और समाज की

अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य के प्रति सजगता में इसकी अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। संस्कृति के प्रभाव से ही समाज के लिए उसका घटक ऐसे कार्यों में प्रवृत्त होता है, जिनसे सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, राजनीतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में उन्नति हुई है।"[7] अतः स्पष्ट है कि देश तथा समाज के विकास में 'संस्कृति' एक अति महत्त्वपूर्ण घटक है। किसी भी देश की प्रगति यदि बाधित करनी होती है, तो सबसे घातक उस पर 'सांस्कृतिक हमला' ही होता है।

रामचरितमानस में राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना

भारत में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से होता आ रहा है। ऋग्वेद में वरूण को 'राजा राष्ट्राणाम्'[8] कहा गया है। यजुर्वेद में 'राष्ट्र' शब्द की अभिव्यक्ति इस प्रकार मिलती है–

"आ ब्रहमेन ब्राह्मणों ब्रह्मवर्श्मी जायतामाराष्ट्र राजन्य शूरडड्षव्यों ज्तिव्याधी महारथों जायता दोग्ध्री धेनुवौदानड्वानाशुः सप्तिः पुरान्धिर्याषा जिष्णू रेथेष्ठाः सेमेयों युवास्य यजमानस्य वीरो जायता निकामें निकामें न पर्जन्यों वषुत फलत्वयों न ओषधयः प०यन्तायोगक्षैमों ने कलपताम्।"[9]

अर्थात् हमारे राष्ट्र में, हे प्रभु ! ब्रह्म विद्या अर्थात् वेद के ज्ञाता ब्राह्मणी सर्वत्र उत्पन्न हो, क्षत्रिय शूरवीर, बाणों से शत्रुओं को बींधने वाले और महारथी उत्पन्न हो, गऊएं दुधारू, बैल भार वहन करने में समर्थ, घोड़े तेज चाल वाले पैदा हों, स्त्रियाँ गृहस्थी को निपुणता से सम्भालने वाली, रथवान् विजय प्राप्त करने वाले, सभा में वाग्मी और वीर युवा इस यजमान के यहाँ उत्पन्न हों भरपूर वर्षा हों, हमारी वनस्पतियाँ कलवती होकर पकें और इस प्रकार हमारा योग क्षेम वहन करें।

उपर्युक्त मंत्र से यह तो स्पष्ट है कि 'राष्ट्र' शब्द निश्चित रूप से किसी भौगोलिक परिसीमा में निवास कर रहे लोगों अथवा किसी एक प्रकार के सांस्कृतिक समुदाय की रक्षा करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। आधुनिक युग में 'राष्ट्र' के पर्याय में अंग्रेजी शब्द श्छंजपवदश का प्रयोग किया जाता है। इसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द 'नेटस' ;छंजनेद्ध से मानी जाती है, जिसका अर्थ है 'जन्मा' अथवा 'उत्पन्न हुआ'। जहाँ तक राष्ट्र की, अवधारणा का प्रश्न है, प्रसिद्ध इतिहासकार ई.एच.कार राष्ट्र को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि–

"राष्ट्र शब्द से एक जैसे मानव समूह का बोध होता है उसके लक्षण हैं :

1. **अतीत और वर्तमान में वास्तविकता, अथवा भविष्य के लिए आकांक्षा के रूप में सर्वनिष्ठ सरकार की धारणा**
2. **अपना अलग विशिष्ट आकार और सदस्यों का पारस्परिक सम्पर्क सामीप्य;**
3. **न्यूनाधिक निर्धारित भूभाग;**
4. **ऐसी चरित्रगत विशेषताएं (भाषा इनमें सर्वाधिक बहुल है) जो किसी राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों और अराष्ट्रिक समुदायों से अलग करती है**
5. **सदस्यों के सम्मिलित स्वार्थ**
6. **सदस्यों के मन में राष्ट्र की जो छवि है उससे संबंधित समवेतभाव या इच्छाशक्ति।"**[10]

मानक हिन्दी कोश के अनुसार **"राज्य/देश किसी निश्चित और विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले लोग जिनकी एक भाषा, एक रीति- रिवाज तथा एक सी विचारधारा होती है, उसे राष्ट्र कहते हैं।"**[11]

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार-**"लोगों के राजनीतिक और आर्थिक संघ के अर्थ में राष्ट्र एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो सारे देशवासी किसी यांत्रिक उद्देश्य से संगठित होकर अपनाते हैं।"**[12]

इस प्रकार किसी राष्ट्र की संकल्पना एक भौगोलिक क्षेत्र के लोगों के निवास-स्थान, जातिगत, भाषागत, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आधारों पर निर्मित भावनात्मक एकता में निहित होती है। परस्पर की अनेक समानताओं के कारण एकता की जो चेतना उत्पन्न होती है इसे ही 'राष्ट्रीयता' कहते हैं तथा इसी भावना से राष्ट्रीय जीवन का विकास होता है।

'जान स्टूवर्ट मिल' नें राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए कहा है कि-**"राष्ट्रीयता मानव-जाति का वह भाग हे जो उन सामान्य सहानुभूतियों द्वारा परस्पर सम्बन्धित हों तो उनके तथा अन्य भागों के बीच विद्यमान नहीं है- जो उन्हें दूसरे लोगों की अपेक्षा परस्पर अधिक इच्छा पूर्वक सहयोग में लाती है, एक ही सरकार के अधीन रहने की आकांक्षा प्रदान करती है और यह इच्छा प्रदान रहने की आकांक्षा प्रदान करती है और यह इच्छा प्रदान करती है उन्हीं की अथवा विशिष्ट रूप से उन्हीं में से किसी एक अंश की सरकार होनी चाहिए।"**[13]

'गोस्वामी तुलसीदास' के रचनाकाल के परिप्रेक्ष्य से अवलोकन करें तो इसका युग मध्यकालीन भारत का है, जिसमें 'राष्ट्र' का स्वरूप व उसकी अवधारणा आधुनिक युग की भांति तो नहीं है, किन्तु इसके बावजूद 'राष्ट्र' की मूलभूत भावना तब भी भारतीय के हृदय में विद्यमान थी। जो हमें 'भक्ति आन्दोलन' में भी दिखता है। यद्यपि यहाँ यह भावना धर्म व संप्रदाय के दायरों में बँधी हुई भी किन्तु इस्लाम के सांस्कृतिक-धार्मिक अतिशय दबाव ने भारतीय जनता में राष्ट्र की भावनात्मक एकता को सजग करने का कार्य तो अवश्य ही किया। **".....जहाँ तक चले आ रहे भारतीय समाज का सवाल है यह सब स्वीकार करते हैं कि इस्लाम के आगमन ने उसे एक गहराधक्का दिया ? विभिन्न धार्मिक संप्रदायों में बँटे हुए विद्यमान भारतीय समाज को एक व्यापक हिन्दू धर्ममत के तले एकजुट होने के लिए विवश होना पड़ा। इस्लाम की ओर से आई सामाजिक-सांस्कृतिक चुनौती को इसी प्रकार झेला जा सकता था और उसका प्रतिकार किया जा सकता था।"**[14]

चूंकि भारतीय संस्कृति में 'राष्ट्र', और 'राष्ट्रीय भावना व चेतना की संकल्पना वैदिक काल से ही मिलती है, अतः तुलसी के 'मानस' पर भी इसका प्रभाव दिखता है। राष्ट्र वहाँ 'राज्य' से संबंधित है। शासन, प्रबन्धन, राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, लोगों में अपने देश या राष्ट्र के प्रति रागात्मक भावना, 'मानस', में उपस्थित 'राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना' को दर्शाती है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता की चेतना मुक्त वातावरण से ही उस देश के सदस्यों में एकत्व की भावना सुदृढ हो जाती है और तत्कालीन भारत में तुलसी यही भावना भारतीय जनमानस में भी जाग्रत करना चाहते थे। 'मानस' में इस शब्द का प्रयोग तो नहीं किन्तु इसके पर्याय के ही शब्द यथा 'देश', 'नगर', 'राज्य' आदि का प्रयोग मिलता है। 'देश' अथवा 'राष्ट्र' के ही अंग स्वरूप- राजा, राज्य, मंत्री, राज्य की संचालन- व्यवस्था, नियमों की रचनायें तथा उसका क्रियान्वन, राजा के कर्त्तव्य, प्रजा के कर्त्तव्य आदि को तुलसीजी ने जिस प्रकार से 'मानस' में प्रस्तुत किया है, उससे तुलसी की राजनीति सम्बन्धी ज्ञान व समझ की झलक स्पष्ट मिल जाती है। यहाँ पर 'मानस' में उपलब्ध 'राष्ट्र' के विविध अंगों एवं 'राष्ट्रीय भावना' का विवेचन कर रहे हैं।यद्यपि 'रामचरितमानस' में 'राष्ट्र' ;छ।ज्व्छद्धतथा राष्ट्रीयता ;छ।ज्व्छ।स्प्ज्लद्धकी आधुनिक संकल्पनाएं उपस्थित न हो, तथापि देश-कल्याण, उसके प्रति शासक और जनता के कर्त्तव्य, अपने शासक ने पूर्ण विश्वास, नगर की स्वच्छता विकास तथा अलंकरण सम्बन्धी सभी भावनाएं व चेतना 'मानस' में उपस्थित हैं।

1. डॉ. रघुवंश सहाय वर्मा, प्रकृति और हिन्दी काव्य, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, सं. 2005
2. (सं.) उदयभानु सिंह, तुलसी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, पहला सं. 1976
3. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पहला सं 1974
4. डॉ. रामनाथ शर्मा एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2000
5. डॉ. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, नव संस्करण-सितम्बर 2002
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, त्रिवेणी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
7. वासुदेवशरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम सं. 1952
8. डॉ. श्रीकृष्ण ओझा, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, आदर्श प्रकाशन, जयपुर-पुस्तक ृण्कसपण्मतदमजण्पद से सभार
9. (सं.) योगेन्द्र बिहारी लाल माथुर एवं रमेश कुमार श्रीवास्तव, भारतीय संस्कृति (निबंध संग्रह), प्रयाग विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 1950
10. महादेवी वर्मा, भारतीय संस्कृति के स्वर, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, सं. वि. 2040
11. (सं.) अजय तिवारी, तुलसीदास एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाशन, पंचकूला (हरियाणा), द्वि सं. 2011
12. ए.आर. देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैक्मिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, प्रथम सं. 1976